International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

ममता कालिया के उपन्यास दुक्खम–सुक्खम में चित्रित स्त्री चेतना का स्वर

मनीषा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,रोहतक

मनुष्य के जन्म के साथ ही उसके सम्बन्ध पैदा होते हैं और उत्तरोत्तर विकसित होते चलते हैं। कुछ सम्बन्ध उसे परम्परा से मिलते हैं और कुछ वह स्वयं बनाता है। मनुष्य स्थिति और परिस्थितियों में विशेष प्रकार का व्याहार करता है। उसके स्वच्छ और उपेक्षित व्यवहार के लिए सामाजिक संस्थाएँ उस पर नियन्त्रित करती हैं जो सामाजिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक भी है। अतः मनुष्य का जो व्यवहार दूसरे मनुष्यों के साथ है उससे ही सम्बन्धों का निर्माण होता है। इन आपसी सम्बन्धों से ही समाज का निर्माण होता है। समाज एक व्यापक संकल्पना है। मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। मनुष्य जीवन के सभी क्रियाकलाप इसी समाज में उत्पन्न होते हैं। मनुष्य की शिक्षा–दीक्षा, विवाह, गृहस्थी, आजीविका, लेन–देन, संतानोत्पति उनका पालन–पोषण शिक्षा आदि कार्य समाज में सम्पन्न होते हैं। समाज की अवधारणा मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति पर आधारित है। यही उसे सम्बन्धों की ओर अग्रसर करती है। मनुष्य के विकास के लिए उसके सम्बन्धों में एकरूपता होना अनिवार्य है। सम्बन्धों की खटास ही समाज को छिन्न–भिन्न और अधोगति देने वाली है तथा संबंधों में और संस्थाओं में परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।

पिछले कुछ वर्षों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है। टूटते परिवार, बड़े होते महानगर, उनकी विभक्त जिंदगियाँ, औद्योगीकरण, मशीनीकरण, उदारीकरण एवं बाजार ने एक अद्‌भुत शून्यता उत्पन्न कर दी है। आदमी भीड़ में खो गया है। दिशाहीन युवावर्ग, बेचैन, रोजगार हीन, चेतना शून्य और लक्ष्मीहीन होता जा रहा है। स्त्री शिक्षा ने जहाँ स्त्री की आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रशस्त किया है वहीं नवीन समस्याएँ भी उभर कर आ रही हैं। मीडिया ने समाज के स्वरूप को ही बदल दिया है। शिक्षित युवा वर्ग रोजगार न मिलने के कारण बेचैन है। महिलाओं व दलितों की स्थिति में सुधार हुआ है तो जागरूक वर्ग में विरोधाभास भी बढ़ा है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति ने जितना विकास किया है उतनी ही समाज में समस्याएं भी उत्पन्न हो रही हैं।

सामाजिक चेतना ही मानव मस्तिष्क को किनारों की क्षमता प्रदान करती है। मानव मस्तिष्क सामाजिक चेतना से प्रभावित होकर समाज के विषय में सोचता है। भाषा धारणाएँ एवं

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

तर्कशास्त्र जिनमें मनुष्य चिंतन करता है सामाजिक चेतना के अंग हैं। सामाजिक जीवन के सभी अन्तर्विरोधों को समाप्त करने में सामाजिक चेतना की सक्रिय भूमिका रहती है। सामाजिक चेतना समाज में व्याप्त शोषण, वर्ग वैषम्य, सामाजिक विकृतियों, रूढ़ियों एवं जनजीवन की विषमताओं का न केवल यथार्थ चित्रांकन है बल्कि आलोच्य युग में इनकी व्यर्थता सिद्ध कर समाज व व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए इनमें अमूल परिवर्तन का स्वर अनिवार्य घोषित करता है। समाज के उत्थान व पतन में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह अलग बात है कि पुरूष प्रधान समाज अपने झूठे अहम् के कारण इस सत्य को स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

दुक्खम–सुक्खम उपन्यास में युगीन समस्याओं का सम्यक् विश्लेषण हुआ है। समस्याएँ अधिकांशतः सामाजिक क्षेत्र में ही जन्म लेती हैं। उनका सम्बन्ध अधिकतर नारी जाति से ही होता है। बहुत सी समस्याओं और कुप्रथाओं ने स्त्री जाति को बड़ी हीनावस्था में पहुँचा दिया है। सामाजिक समस्या, पति–पत्नी के आपसी टूटते सम्बन्ध, अनमेल विवाह आदि समस्याएँ स्त्री जाति से संबंधित हैं। स्त्री की दयनीय स्थिति का कारण उसका स्त्री होना है, व इन अभिशापों का उस पर लदना है। प्रमुखतः प्रस्तुत अध्याय में स्त्री के जीवन को अभिशप्त करने वाली सामाजिक समस्याओं पर विचार किया गया है। साथ ही इस तथ्य को भी रेखांकित किया गया है कि उत्पीड़न की शिकार जागृत स्त्रियाँ ही उत्पीड़न के अतिरेक के समक्ष टूटती नहीं, वरन् अपनी भीतरी शक्तियों का संचय कर उसके खिलाफ अकेले या सामूहिक रूप से लोहा बनकर संघर्ष करती है।

सामाजिक चेतना से अभिप्राय है – समाज में जागरूकता। जैसे–जैसे समय बदलता रहता है वैसे ही समाज में रह रहे मनुष्य की सोच भी बदलती रहती है। मनुष्य जैसे समाज में रहता है वह उसी समाज में रह रहे लोगों से प्रभावित होता है।

इसी तरह परिवार भी समाज का एक अंग है। हमारे समाज में परिवार संस्था का स्वरूप बदला है। पहले संयुक्त परिवार थे आपसी रिश्तों से बंधे हुए थे। लेकिन अब एकल परिवार होकर भी मनुष्य घुटन महसूस करता है। उसकी स्थिति पहले से बदतर होती जा रही है और इस भयानक स्थिति में पिसती जा रही है स्त्री।

दुक्खम–सुक्खम उपन्यास में ममता कालिया ने परिवार में स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति को बेहद संवेदनशील ढंग से दर्शाया है। दोयम दर्जे की प्राणी होने के कारण परिवार और समाज में स्त्रियाँ प्रायः शोषित होती रही हैं। समाज में स्त्रियों की पुरूषों पर आश्रितावस्था,

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

पराधीनता का कारण उनकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति है। चाहे संयुक्त परिवार हो या एकल परिवार पुरूष सदा से स्त्री को सम्पत्ति समझता रहा है। उसका नियंत्रण अपनी इच्छानुसार करना चाहता है। वस्तुतः हमारे समाज का ढाँचा भी इस प्रकार का है कि स्त्री का शोषण हर कहीं होता है। परिवार से बाहर प्रत्यक्ष रूप में तो परिवार में परोक्ष रूप में और प्रत्यक्ष में दोनों रूपों में होता है। अधिकांश स्त्रियाँ परिवार के भीतर–बाहर सुरक्षित होकर भी आहत और अपमानित होती रहती हैं या की जाती रही हैं। सीमोन द बोउवारा ने 'सेकंड सैक्स' पुस्तक लिखकर इस विचारधारा को क्रांति का रूप दिया है। उसका मानना था कि धर्म और सामाजिक रूढ़ियों ने स्त्री को समाज में दोयम दर्जा दिया है। जिसके पीछे पुरूष वर्चस्व की सामंती ठसक है। स्त्री को अपने अधिकार पाने के लिए इन सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों से मुक्ति के लिए लम्बी लड़ाई लड़नी है। यहाँ पर ममता कालिया जी ने विद्यावती के माध्यम से स्पष्ट किया है ''मूर्ख नहीं थी विद्यावती। सीमित शिक्षा के बावजूद उसमें सहज व्यावहारिक ज्ञान था कि स्त्री के लिए घर–परिवार एक किस्म का आजीवन कारावास होता है।'' आगे विद्यावती कहती है कि ''मोय नाय मिलो गांधी बाबा नहीं मैं पूछती क्यों जी तुमने सिर्फ आदमियों को आजादी दिला दी, लुगाइयों को कब आजाद करोगे तो वो तो आज भी गुलाम हैं।''[1]लाला नत्थीमल ने कहा ''तुम गुलामी कर रही हो जरा मैं भी सुनूँ। घर का काम बहू करै, दुकान मैं सँभारूँ, तोपे कौन–सी जिम्मेदारी है?'' ''अभाल की नहीं मैं तो पिछले सालों की बात करूँ। इत्ती जिन्दगानी दुक्खम–सुक्खम कट गई अपनी राजी से कछु नायँ कियौ।'' लाला नत्थीमल ने कहा ''क्या करना चाहती रही तू। कुनबे की चौधराहट तूने सँभारी, देसी घी के चचैमा परामठे खाये, देखते बारी न कोई सास न ननद। और का कासर रह गयी रे।'' ''तुमने बस इत्ता ही जाना। अरे औरत रोटी और पाटी के ऊपर भी कछू चाहै कि नायँ। मर्द गुलामी से अच्छी तो मौते होवे।''[2]

ऐसी स्त्रियाँ जो मुक्ति से अवगत तो हैं। मुक्त होना भी चाहती हैं लेकिन इच्छा शक्ति की कमी के कारण वे परिवार की इज्जत, स्त्रीत्व–मर्यादा, संतान की ममता के चक्रव्यूह और समाज व धर्म के भय के दायरे से बाहर नहीं निकल पाती और साथ ही परिवार और पति पर पूरी तरह आर्थिक निर्भरता भी उनकी इस दुविधा और दुर्गति का एक बड़ा कारण होता है। स्त्री मुक्ति की मुहिम उसके अस्तित्व, अस्मिता, आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता के मुद्दो पर केन्द्रित है।

आलोच्य उपन्यास में लाला नत्थीमल के व्यक्तित्व को केन्द्रित कर व्यक्त किया है कि लाला नत्थीमल जिस पीढ़ी और मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं वहाँ स्पेस की अवधारणा

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

ही नहीं। यह पीढ़ी शासन और दमन के लिए बनी है इसलिए अपनी हैसियत भर आतंक अपने अधीनस्थों पर कायम रखना चाहती है। परिवार में शासित होते हैं पत्नी और बच्चे। लाला नत्थीमल के लिए महात्मा गाँधी का जागृति आन्दोलन खलनायक से कम नहीं, जो उनके परिवार की स्त्रियों को बरगला रहा है इसलिए मर्द, अन्नदाता, स्वामी होने के दंभ में गूँजता आदेश, ''आज गयी सो गयी, अब मैं कभी तुम दोनों को गाँधी बाबा के नाम पर नंगा नाच करते ना देखूँ नहीं वहीं खोद के गाढ़ दूँगा।'' यह वह पुरूष है जो जवान बेटे में अपने अक्स का प्रत्यारोपण कर अपनी ताकत दूनी कर लेना चाहता है। ''घर में दो मर्द हों तो औरतें कायदे से रहे।'' तो ताकत का प्रदर्शन कर आतंक और दमन में अपनी समलता देखता है। ''जब वे घर में पत्नी या बच्चों को कड़क कर डाँटते, मन ही मन अपने को अंग्रेज से कम नहीं गिनते थे।''[3]

सम्बन्धों में स्नेह और संवेदना की जगह पैसे–पैसे का हिसाब–किताब और संवाद की जगत आतंक – दरअसल आगे बढ़ने के नाम पर परंपरा का यह निरर्थक दुहराव ही पीढ़ियों में टकराव का कारण बनता है। चन्द्रकांता लिखती हैं ''इतिहास बताता है कि पुरूषों ने स्त्री को बनाया। जैसे उठाया वैसे उठी, जैसे बैठाया वैसे बैठी, अपने अधिपत्य से शास्त्रों में लिखी – रीति–नीति से।''[4]

भारतीय महिलाओं के बारे में समाज की सोच दकियानूसी रही है। कोई लड़की अगर पितृसत्तात्मक समाज का उल्लंघन करती है तो उसके साथ बदसलूकी की जाती है। शिक्षित होने के बावजूद आज भी स्त्री को समाज उठता हुआ नहीं देख सकता। आज भी स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। लेकिन ऐसी परिस्थितियों में भी कुछ महिलाओ ने पितृसत्तात्मक नियमों को ताक पर रखकर खुली जिंदगी जीने का ठोस निर्णय लेकर अपनी अस्मिता को पहचाना है। लेकिन महिलाओं की स्थिति में आज जो भी बदलाव हुआ है वह मीडिया के कारण ही हुआ है। इसका मूल्यांकन करती हुई क्षमा शर्मा कहती हैं ''महिलाओं की आवाज बढ़ रही है। उनकी आवाज को मजबूती प्रदान करने में महिला संगठनों, शिक्षा संस्थानों, स्वयं सेवा संस्थाओं, बुद्धिजीवियों तथा मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है।''[5]

स्वतंत्रता आज की स्त्री की चिंता का प्रमुख विषय है। स्वतंत्रता का मूल अर्थ संभवतः अपने निर्णय स्वयं लेने के अधिकार से है और तभी वह सुरक्षित रह सकती है। ममता कालिया ने उपन्यास में स्त्री को महत्व दिया जिसमें उसे अपने निर्णय स्वयं लेने हैं। लेखिका ''नारी स्वतन्त्रता के सन्दर्भ में घर की कल्पना ऐसे घर से करती है जिसमें पति–पत्नी की समान साझेदारी हो।''[6] आत्मबोध उनको पति–आश्रिता पत्नी से उठाकर महत्वाकांक्षी और स्वाभिमानी

नारी बना देता है। कितनी ही मान्याताएँ ऐसी हैं जिनके कुत्सित व अप्रासंगिक रूप को लेखिका तोड़ती है क्योंकि यह आज के युग की मांग है। विद्यावती को व्यवाहारिक ज्ञान था कि स्त्री के लिए घर–परिवार एक किस्म का कारावास होता है। ''विद्यावती को लगा क्या घर–परिवार में फँसी स्त्री की दशा भी सी–क्लास कैदी जैसी नहीं है। आजादी के मतवालों का तो नाम–गाम जेल के इतिहास में लिखा मिल जाएगा। औरतों का तो नाम–निशान न मिलै।''[7]

स्त्री एवं उसकी महत्वाकांक्षा बुरी नहीं, उसके प्रति संकुचित संकीर्ण दृष्टि रखना अमानुषिक होता है। पुरूष में बदलाव की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। लेखिका ने यहाँ पुरूष को भी स्त्री के उत्थान के लिए आगे आने के लिए प्रेरित किया है ताकि नत्थीमल जैसे पुरूष भी स्त्रियों पर शासन चलाने के बजाया उनका साथ दे, उनकी भावनाओं की कद्र करे। जॉन स्टूअर्ट मिल के अनुसार – 'समाज का रवैया स्त्री की क्षमताओं को एक इतरलिंग के हित में दबाने का न होकर अगर सहयोगितापूर्ण होता तो मानवता का इतिहास और सभ्य समाजों का चेहरा ज्यादा सुसंस्कृत और ज्यादा मानवीय होता तो इसमें दो राय नहीं।''[8]

स्त्री को पुरूषसत्ता वाली मानसिकता में जो कुछ झेलना पड़ता है उस दर्द को अत्यन्त गहराई से लेखिका ने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। लेखिका उपन्यास में समाज व पुरूष दोनों को कठघरे में खड़ा करती है वह बेवजह उलझती नहीं। हाँ बेखौफ अपनी बात जरूर कहती चलती है। अपने औरत होने के सच और 'औरताना' सरोकारों के सच को डंके की चोट पर कहते सुनाते कि ''जनै का वजह है, घर–दुआर और संसार में जितनी प्रीत औरत को होय, उतनी आदमी को नहीं होय।''[9]

लेखिका तीन पीढ़ियों को आमने–सामने रख कूदते–फलागते वक्त की कथा भी कहती है और तेज गति के बीच जड़ता के ठुस्सपन के साथ अड़ोल खड़े वक्त की बारीकियाँ भी चुन लेती है।

आलोच्य उपन्यास में भगवती ने दसवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर स्कूल का कीर्तिमान तोड़ा और उसी साल उसे कस्तूरबा विद्यालय में अध्यापिका की नौकरी मिल गई। लाला नत्थीमल खबर से हक्का–बक्का रह गए क्योंकि उन्होंने कभी कल्पना ही नहीं की थी कि ऐसा जमाना आएगा जब लड़की भी कमाई करने लगेगी। आदत के मुताबिक पहले उन्होंने विरोध किया। ''भग्गो काम पर नहीं जाएगी। लोग क्या कहेंगें। लड़की की कमाई खाओगे। बनिया बिरादरी में तो नाक कट जाएगी। बाद में बड़े बेमन से पिता भगवती को काम

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

पर भेजने को राजी हुए। हिदायतनामा न देने की भूल नहीं की''। ''उन्होंने उसे डपटाकर समझाया। टीचर बन गयी है इसका मतलब यह नहीं कि सड़कों पर फक्का मारती घूमे। घर से स्कूल, स्कूल से घर सूधे से आना–जाना है। सड़क पर कभी किसी से बोलना नहीं और कान खोलकर सुन ले फैसन करबे की कोई जरूरत नहीं।''[10] अगर वे नौकरी करती हैं तो जरूर कोई न कोई मजबूरी है। स्त्री अगर नौकरी करती है तो जरूर विधवा होगी, परित्यक्ता होगी। या फिर हो सकता है कुंवारी ही हो अभी। इसलिए भाई–भाभियों नव परिवार के सदस्यों ने नौकरी करने को भेज दिया होगा। इसमें कुछ हद तक वर्षों से जड़ जमाए बैठे पुरूषोचित संस्कारों की संकीर्ण मानसिकता भी दोषी है क्योंकि शिक्षित स्त्रियों ने नौकरी पेशा होने से घर में पुरूषों की भूमिका बदल रही है। कामकजी स्त्री की विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ रोहिणी अग्रवाल ने बताया – ''आज मध्यवर्गीय नारी ने सिद्ध कर दिया है कि मात्र आर्थिक स्वतन्त्रता से समाज में नारी की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। इसके लिए अनिवार्य है नारी शिक्षा, जागरूकता एवं अपनी स्थिति पर विचार करने की क्षमता। इन सब तत्वों ने संयुक्त रूप से आज की मध्यवर्गीय कामकाजी नारी में अद्‌भुत आत्मविश्वास भरा है।''[11] लेखिका कहती है ''घर से बाहर काम करने वाली औरत दोहरा काम यह कर रही है कि वह एक तो अपना विकास कर रही है। पुरूष की जागृति का भी काम कर रही है।''[12] निस्संदेह आज की मध्यवर्गीय स्त्री ने आज से साठ साल पहले की स्त्रियों की अपेक्षा ज्यादा स्वतन्त्रता और अधिकार हासिल कर लिए हैं। पारम्परिक मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह करके अपना एक स्वतन्त्र मुकाम कर लिया है। वह उसकी सर्वप्रमुख विशेषता और उपलब्धि है।

स्त्री स्वतन्त्रता से अभिप्रायः उच्छृंखलता से नहीं बल्कि इसका अर्थ है स्त्री को अपने मापदण्ड स्वयं निर्धारित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। स्वतन्त्रता चाहिए उस रूढ़िवादी समाज के बंधनों से जो स्त्री के भीतर की विद्रोही आवाज सुनने से इन्कार करता है। दैहिक और मानसिक स्वतन्त्रता की भी। स्वतन्त्रता चाहिए सामाजिक सोच की। उस मानसिक बनक से जो स्त्री के समूचे अस्तित्व को फसाँए हुए है। दूसरी अपना अधिकार अर्जित करने की। ममता कालिया का मानना है – ''आयु भर उस पर तोहमतें लगती है और फिर बुढ़ापे में वह देवी बन जाती है। औरत हमारे समाज में जीनस की तरह है जो पहले सूली पर लटकाई जाती है और फिर उसका पुनरूत्थान होता है और इसी रूप को अधिक सुन्दर माना जाता है। नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व तभी संभव है जब वह परम्पराओं, प्रथाओं आदि से मुक्त हो। किसी भी तरह का भय उसके विकास में बाधा न पहुँचाता है।''[13]

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

हमारे समाज में स्त्रियों के आचरण के विभिन्न पहलुओं, विशेषकर नकारात्मक पहलुओं को व्यक्त करने वाली असंख्य उक्तियाँ प्रचलित है। यथा – नारी सबला है, पराई अमानत, पराया धन, औरत माया का प्रतिरूप है, नरक का द्वार, औरत फसाद की जड़ है, औरत और जमीन बिना मालिक के नहीं रहती, औरत की अक्ल टखनों में होती है इत्यादि। कितने ही वाक्यांश हैं जो अनपढ़ व्यक्तियों से लेकर प्रबुद्धजनों तक प्रयोग में लाए जाते हैं लेकिन स्त्री शिक्षा ने इन सभी पहलुओं को गलत साबित कर दिया है।

आलोच्य उपन्यास में स्त्री शिक्षा पर जोर दिया गया है। बिना शैक्षिक कलम के स्त्री अधूरी है। शिक्षा के ज्ञान द्वारा उसकी छवि को उभारा गया है। शिक्षा हमें आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाती है। दसवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उतीर्ण करने के बाद भगवती बड़ी बहन लीला और भाभी इन्दु की तरह घर गृहस्थी के भंवर में तिनके सी डूब जाती। यदि विद्यावती ने लाला नत्थीमल से बेटी के हक की लड़ाई न लड़ी होती। प्रकृति से दकियानूस लाला नत्थीमल के पास ग्राहक, मुनाफा और कारोबार के अतिरिक्त किसी अन्य शै को समझने का विवेक और अवकाश नहीं। रटू तोते की तरह संस्कारों की बोली बोलकर वे लकीर पीटने में जीवन की सार्थकता समझते हैं। इसलिए दसवीं की परीक्षा में स्कूल के कीर्तिमान तोड़ने के बाद जब भगवती कस्तूरबा विद्यालय में नौकरी मिलती है तो वे हकबका जाते हैं – ''लड़की की कमाई! लोग क्या कहेंगे। बनिया बिरादरी में तो नाक कट जाएगी।'' प्रगतिशील विद्यावती माथा न पीटे तो क्या करे – ''छोरी ने पढ़ाई कर सर ऊँचा किया है तुम्हारा। लड़की है तो क्या हुआ।'' लाला नत्थीमल के पास आपत्तियों के ढ़ेरों बाण। विद्यावती के पास हर बाण की अचूक काट। जो हथियार डाल दे वह पुरूष नहीं। पत्नी की नीयत पर ही शक – ''तुम इत्ती हिमायत क्यों कर रही हो?. . .छोरी की कमाई खाओगी?'' विद्यावती के पास संयम और तर्क का ठसका – ''मैंने देख लिया न। पढ़ाई के बिना औरत की जिन्दगी नरक है। येई लीली को बीच में स्कूल से उठा लिया। कुंती भी छठी से आगे नाँय पढ़ी। कवि (बेटा) पढ़ गया तो कित्ता आगे बढ़ गया।''[14] बेशक विद्यावती के इस संकल्प में औपचारिक ढंग से शिक्षा ग्रहण न कर पाने का मलाल तो छिपा ही है जिसे बेटियों की किताबें पढ़कर और दीवारों पर सुलेख लिखकर पूरा किया है। विद्यावती अपने पंखों के सहारे अनंत व्योम को नापते स्त्री स्वप्न का प्रतीक बनकर उपन्यास में उभरती है। आज स्त्री को शिक्षित होना आवश्यक हो गया है। उसके लिए से समाज से संघर्ष करना होगा। नहीं तो समाज उसे स्वीकृति नहीं देगा। आधुनिक युग में शिक्षा के प्रसार के साथ स्त्री शिक्षित होकर परिवार में स्वतंत्र निर्णय लेती है। अब वह किसी भी

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

अत्याचार को मूक दर्शक की भांति नहीं देखती बल्कि इसके विरोध में अपना प्रखर स्वर दर्ज करती है। राजेन्द्र यादव का कहना है। ''शायद स्त्री स्वयं भी यह जानती है कि वह सर्वव्यापी है, वह अपना जन्म–घर छोड़ने के बाद न जाने किन घरों, धर्मों, वर्गों, वर्णों और गृहस्थियों में (प्यार की मारी या जबरदस्ती) ले जाई जाती है फिर वहीं की होकर रह जाती है – यह स्त्री की वह शक्ति है जो धर्म, वंश, उम्र सबके पार उसे ले जाने में समर्थ है, चूंकि यातना हमें दूसरों से जोड़ती है इसलिए स्त्री सशक्तिकरण का एक बिन्दु भी, वह उन्हें मुक्त भोगी होने का आश्वासन देता है।''[15]

बीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध में हर मनुष्य के अन्दर जड़ता और जागरूकता का घमासान मचा रहता था। स्त्रियों के अन्दर और भी ज्यादा क्योंकि उस वक्त उन्हें शिक्षित करने वाली संस्थाएँ कम और बन्धित करने वाली अधिक थीं। गाँधी के स्वतन्त्रता आन्दोलन ने स्त्रियों को घर परिवार के बाहर निकलकर देश के लिए आंदोलन करने और परिवार के दायरे की बजाय देश के दायरे तक उनकी सोच को विस्तृत करने में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाई या यूँ कहा जाए कि स्त्री की माँ, बहन, पत्नी व प्रेमिका की भूमिका से बाहर निकलकर देश के नागरिक की हैसियत हासिल करने की राह दिखाई। राजनीतिक चेतना से लैस हुई भारतीय स्त्री का सामूहिक तौर पर पहला बहुत बड़ा कदम था। हालांकि आजादी की सिपाही या देश की नागरिक बनी वह स्त्री परम्पराओं से मुक्त नहीं हो सकती थी लेकिन वह घर और परिवार की दीवारें तोड़ने में जरूर सफल हो गई थी। यहाँ पर लेखिका ने व्यक्त किया है कि नत्थीमल के मना करने पर भी विद्यावती और उसकी बेटी ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया। आंदोलन में जितना पुरूषों का योगदान था उतना ही महिलाओं का भी था। स्त्रियों की यह मुहिम राजनीतिक मुहिम थी। वे आजादी पाना चाहती थी। ''उन्होंने टाउनहाल की सीध में सड़क पर खड़े होकर ललकारा। ''प्यारी बहनों!'' हमारे पूजनीय बापू इस वक्त जेल में हैं। हम सबको बापूजी की कसम है, हम यहाँ तिरंगा फहराकर जाएंगी, यह देश हमारा है, इसकी सब बातें हमारी हैं। आप सब तैयार हैं? सबसे जोर से हुंकारा भरा।''[16] स्त्रियों में आजादी की भावना कूट–कूटकर भरी हुई थी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लेखिका ममता कालिया ने अपने समय और समाज को पुनः परिभाषित करने का जोखिम अपने उपन्यास में उठाया है। कभी वे समूचे परिवेश में नई स्त्री की अस्मिता और संघर्ष को शब्द देती हैं, तो कभी रूढ़िग्रस्त परम्पराओं की खाई से स्त्री को बाहर निकालती हैं, तो अगले ही पल स्त्री को अपने दायित्वों और अधिकारों

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

के प्रति सचेत करते हुए समसामयिक सरोकारों से जोड़ती दिखाई पड़ती है। लेखिका का मत है स्त्री को संकल्प और विकल्प की स्वाधीनता होनी चाहिए। क्योंकि इसके बिना उसका जीवन, उसकी शिक्षा, नौकरी यानी उसका सम्पूर्ण जीवन एक कारावास होता है तथा परिवार में स्त्री को विचारगत स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिससे वह अपनी गौण भूमिका एवं परम्परागत रूढ़ छवियों अथवा परिवार व समाज में अपनी स्थिति पर संवाद स्थापित कर सके और संविधान द्वारा दिए गए अधिकार, व्यावहारिक आधार पर उन्हें उपलब्ध हों। परिवार के सदस्य उसे सेंसर की निगाहों से न देखें और उस पर संदेह कर उसका आचरण कुंठित न करे। स्त्री अपने मन से जिए, सोचे, लिखे तथा जीवन साथी चुनने की स्वतन्त्रता हो, यही स्त्री की स्वाधीनता है। लेखिका ने समाज में व्याप्त दहेज जैसी बुराई को भी उपन्यास में व्यक्त किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 97
2 वही, पृ॰ 175
3 ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 54
4 चन्द्रकान्ता, कथा सतीसर, पृ॰ 411
5 क्षमा शर्मा, स्त्रीवादी विमर्श : समाज और साहित्य, पृ॰ 50
6 ममता कालिया, हरिगंधा (साक्षात्कार), जून 2010, पृ॰ 17
7 ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 97
8 जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्रियों की पराधीनता, पृ॰ 54
9 ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 143
10 ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 162
11 डॉ॰ रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, पृ॰ 69
12 ममता कालिया, मेरे साक्षात्कार, पृ॰ 28
13 संपादक नीलम सिंगला, साक्षात्कार, जून 2010, पृ॰ 16
14 ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 63
15 राजेन्द्र यादव; हंस, जून 2008, पृ॰ 8
16 ममता कालिया; दुक्खम–सुक्खम, पृ॰ 56